(कहानी)

मोह

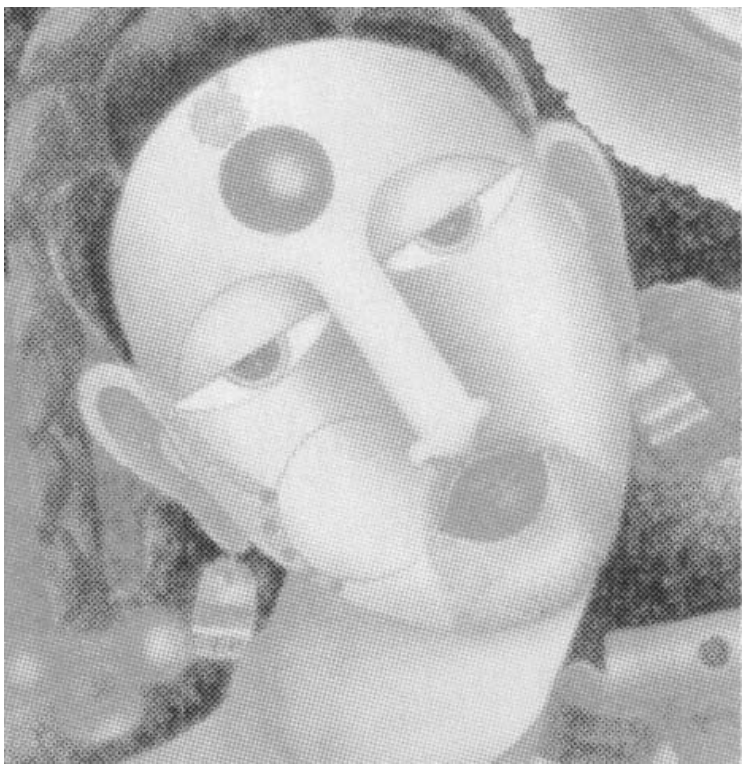

जीवन भर ईमानदारी से काम करने वाला एक साधारण आदमी सारा जीवन अपनी आय से कम खर्च कर के, पैसा-पैसा जोड़ कर एक मकान बना ले अपने रहने के लिए, बस वही संपत्ति होती है बच्चों के लिए छोड़ जाने को।

अभी सुबह के दस ही बजे हैं और हम इस लेक वाशिंगटन बीच-पार्क पर पहुंच गये हैं। बेटे के साथ आये हैं। भारतीय लोगों की संस्था है मिलन। उस में बहुत सक्रिय है वह। ये लोग ऐसे आयोजन करते ही रहते हैं जहां भारतीय परिवारों को आपस में मिलने-जुलने के अवसर मिलें। आज रविवार को पिकनिक का आयोजन हुआ है। उसने हमें कुछ दिन पहले ही बता दिया था, 'आप लोगों को भी चलना है। पिकनिक ग्यारह बजे से है, पर मेरे साथ एक घंटा पहले ही निकलना होगा, मुझे जल्दी पहुंच कर बहुत से काम करने हैं। प्रबंधकों में से हूं न।'

हमें असुविधा होगी, पर वह विवश है, कुछ कर नहीं सकता, इसलिए यह सब कह कर शिष्टाचार निभा रहा था। 'नहीं नहीं, हमें कोई असुविधा नहीं है,' ऐसे अवसरों पर हम दोनों- मैं और मेरे पति- अक्सर यही कहते हैं। मैं तो उसका मन रखने के लिए आगे भी जोड़ देती हूं, 'हमारे लिये तो और भी अच्छा है। एक घंटा और मिल जायेगा, घर से बाहर घूमने के लिये।' सच पूछो तो उसका मन रखने की ही बात नहीं है। वस्तुत यही अच्छा है। घर से बाहर निकलने के अधिक अवसर मिलते ही कितने हैं यहां? यों सुबह के दस बजे से शाम के पांच-छह बजे तक थक कर चूर हो जायेंगे, इसमें भी कोई संदेह नहीं। वह तो शाम को भी जल्दी नहीं निकल पायेगा न, यह कह कर कि मेरे माता-पिता थक गये हैं। प्रबंधकों में से हैं, तो सब समेट कर ही तो चल पायेंगे। अब जो है सो है, सुविधा-असुविधा की बात क्या करनी। शाम की बात बाद में सोचेंगे। अभी तो मन खुश हो गया है स्थान को देखते ही। चारों ओर फैली हरियाली, दूर से दिखता झील का जल, वातावरण बहुत ही सुहावना लग रहा था। मौसम भी तो कितना खुला हुआ था। धूप की हल्की-हल्की किरणें पेड़ों के पत्तों में चमक पैदा करती हुईं, अपनी आभा बिखेर रहीं थीं।

'मैं चलता हूं, जरा काम देखने। आप लोग आस-पास घूम आइये।' कह कर निकल गया वह।

'जरा रेस्ट-रूम होकर आता हूं।' ये चल दिये थे निबटने।

ये- मेरे पति- मैं अक्सर इन्हें 'ये' ही कहती हूं। इनका नाम राघवेंद्र है, पर मैं इन्हें सामने नाम से नहीं बुलाती, पीछे भी कभी-कभार ही, बहुत जरूरी होने पर ही लेती हूं नाम। हमारे जमाने में कहां लेते थे पति का नाम। ये आजकल की लड़कियां, एक वाक्य में दस बार पति का नाम न लें तो इनका काम ही नहीं चलता। चले भी कैसे, आधे से ज्यादा काम तो पति को आदेश दे-दे कर कराती हैं। पता ही नहीं चलता, छोटे भाई को बुला रही हैं या घर के मुंडू को आवाजें दे रही हैं।

मैंने सोचा मैं भी हो आऊं, नहीं तो अपने लिये अलग से कहना-जाना होगा। निबट कर आये तो देखा, पास ही जंगल में से कच्चा सा रास्ता जा रहा है। घूमने के लिये उसी पर चल निकले। दोनों ओर पेड़ों और झाड़ियों की सघन हरियाली और बीच में यह भूरी सी मिट्टी वाला कच्चा रास्ता। अचानक मेरी दृष्टि एक झाड़ी पर पड़ी। लाल-लाल बेरियां। मैं पुलक उठी, 'पकी हुई हैं।' कहकर एक तोड़ी और मुंह में डाल ली।

ये झल्ला उठे, 'कुछ भी उठा कर मुंह में डाल लेती हो, जहरीली हुई तो...'

'नहीं होतीं जहरीली ये, मुझे मालूम है।' मैं आश्वस्त थी। अभी कुछ ही दिन पहले तो सविता बता रही थी कि वे लोग पिकनिक पर गये थे और उन्होंने खूब बेरियां तोड़-तोड़ कर खाई थीं। पर ये मेरा पीछा छोड़ने वाले नहीं थे। 'याद नहीं है तुम्हें, तुमने त्रिनिदाद में वह कज्जा अखरोट पेड़ में तोड़ कर मुंह में डाला था, कैसा सूज कर लाल हो गया था तुम्हारा होंठ।'

मेरा यह किस्सा जितनी बार मेरे पति बच्चों और मित्रों को सुना चुके हैं, उससे ज्यादा ही बार मैं सुना चुकी हूं। असल में अपने ऐसे किस्से इससे पहले कि ये सुनायें मैं खुद ही सुनाना शुरू कर देती हूं। हंसकर, मजा लेकर सुनाने में मैं वह सब छुपा लेती हूं, जो मेरे पति के सुनाने में रहता है।

'बच्चों जैसे हरकतें करती हो तुम इस उम्र में भी।' ये मुझे मेरी उम्र याद दिलाये बिना नहीं रहते।

'क्या हुआ है मेरी उम्र को, पिकनिक पर आये हैं मौज-मस्ती करने।' मैं मस्ती की उसी लहर में महिला-समिति की पिकनिक का किस्सा सुनाने लगी। उस पंचेंद्रिय-उद्यान में जो नया बना है, ये तो कभी गये ही नहीं वहां, हम सब कैसे पेड़ों के तने पकड़-पकड़ कर उसके साथ गोल-गोल घूमीं थीं पुरानी फिल्मी नायिकाओं की तरह गाने गाती हुईं, 'मैं क्यों न नाचूं आज खुशी से मेरा जिया लहराया', यह जिया भी अजीब पागल चीज है। किसी भी बात से खुश हो जाता है। बस घर से बाहर निकले, बाग-बगीचे देखे, पेड़ देखे, झील-सरोवर देखे और जिया खुशी से नाचने लगा। ये मेरे ऐसे किस्से कई बार सुन चुके हैं। बोले, 'हां-हां, दिमाग बंद कर देने से सत्तर साल की बुढ़िया सोलह साल की किशोरी नहीं हो जाती।'

एक मैं ही तो नहीं नाची-झूमी थी। उषा, मीना, कल्पना, सभी तो गा रही थीं। वे सब भी क्या साठ-सत्तर की नहीं हो रहीं, मैंने तुनक कर प्रतिवाद किया। अपना बचाव करने की असफल कोशिश मैं करती ही रहती हूं।

कच्चे रास्ते वाला चक्कर काटकर लौटे तो लगा थक से गये हैं। थोड़ा सुस्ता लेने के लिए झील की ओर चले और वहीं बेंच पर बैठ गये। संवाद बनाये रखने के लिए मैंने बहू-पुराण शुरू कर दिया, 'देखो न, अनिला को, कितने दिन पहले से समीर ने कह रखा था इसे पिकनिक के लिये, पर नहीं आई न साथ।'

'अरे वह डॉक्टर है, उसे कई काम रहते हैं।' मेरा विरोध और उसका बचाव इन्हें सदा ही जरूरी लगता आया है, 'की होगी कोशिश, निकल आया होगा कोई जरूरी काम।'

'हां-हां, अब तो निकलेंगे ही जरूरी काम। शादी से पहले देखा था, कैसे पीछे पड़ी थी समीर के, तब सारे जरूरी काम कहां गये थे?' मैं झल्लाई।

'तुम भी बस, अपना समीर भी कम पीछे नहीं पड़ा था उसके। इस उम्र में होता ही है ऐसा, पता नहीं प्यार होता है या देह का आकर्षण, ऐसा मोह हो जाता है कि यह न मिली तो जिंदगी ही नहीं।' ये अपने अनुभव और ज्ञान के अस्त्र चला मुझे परास्त करने में लगे थे।

'हां, सो तो है,' मैंने हथियार डाल दिये। 'ठीक ही है, बुरी नहीं है, अच्छा ही निभा रही है हम लोगों के साथ भी।'

अब मैंने दूसरा राग छेड़ा, 'लो अब तक तो ठीक थी यह आंख, अब फिर पानी टपकने लगा... यह आंख भी मुझे चैन से जीने नहीं देगी।'

पति को मेरी अ ांख के कष्ट से थोड़ी सहानुभूति हुई। इस एक विषय पर तो ये मेरा दु:ख समझते हैं। दरअसल बात ही कुछ अजीब हुई है मेरे साथ। किसी को भी सहानुभूति हो ही जायेगी, फिर ये तो मेरे पति हैं, हम बुढ़ापा साथ-साथ भुगत रहे हैं। पिछले महीने तक तो सब कुछ ठीक ही था। फिर एक आंख से कुछ कम दिखने लगा, धुंधला सा। दूसरी तो बिल्कुल ठीक थी। काम तो ठीक से चल ही रहा था, पर मैं रोज-रोज हर समय यही कहती रहती, 'इस आंख से कुछ कम दिखता है।' कोई दूसरा सुने भी तो कहे क्या? कम दिखता है या ज्यादा, उसे क्या? पर मेरी तो अपनी आंख थी, अच्छी-भली थी, यह अचानक इसे पता नहीं क्या हो गया। बेटा बहू दोनों डॉक्टर हैं, सो एक दिन कुछ इस तरह से मैंने कहा कि सुन ही लें और जवाब भी दें। तो सुन लिया उन्होंने और जवाब भी दे दिया, 'अभी काम तो चल रहा है न, तो कुछ दिन और चला लो। डॉक्टर को दिखाया तो ऑपरेशन बता देगा। अभी किसी को फुर्सत नहीं है यह सब झंझट झेलने की। उपयुक्त समय पर दिखायेंगे।'

यह भी कोई जवाब हुआ? इन्हें फुर्सत नहीं है। इन्हें तो कभी भी फुर्सत नहीं होगी। मैं पति के पीछे पड़ गई, 'तुमने जिस डॉक्टर को अपनी आंख दिखाई थी उसी के पास ले चलो न मुझे भी।'

ये कौन सा कम टालू हैं। बोले, 'जब बच्चे अभी मना कर रहे हैं तो रुक जाओ न कुछ दिन, आखिर वे लोग डॉक्टर ही तो हैं।'

पर मैं कहां मानने वाली थी, 'अरे कोई डॉक्टरी सलाह पर थोड़े ही मना कर रहे हैं। उन्हें फुर्सत नहीं है, तुम्हें तो फुर्सत ही फुर्सत है। रिटायर्ड हो अब तो।'

पति की टालमटोल नहीं चल सकी। जब से रिटायर हुए हैं 'फुर्सत नहीं है' की आड़ में बच नहीं पाते। ले गये वे मुझे डॉक्टर के पास। वही हुआ। डॉक्टर ने तुरन्त ऑपरेशन कराने को कह दिया। अब बड़ी मुश्किल में पड़े हम।

बेटा बहू भी मजबूर हो गये। उसी सप्ताह में ऑपरेशन कराना पड़ा। अगले दिन जब डॉक्टर को आंख दिखाई तो डॉक्टर खुश था, 'आंख में पूरी चमक वापिस आ गई है,' वह बोला।

पर परीक्षण के बाद मैं तो चकित थी, 'डॉक्टर! मुझे तो दूसरी आंख से बिल्कुल दिखाई नहीं दे रहा।' परेशान होने की बारी अब डॉक्टर की थी। एक सप्ताह तक वह मुझे कई तरह की पट्टी पढ़ाता रहा। मेरी दूसरी आंख की ज्योति क्यों नष्ट हो गई- इसके अस्पष्ट से कारण बताता रहा, जो मेरी समझ में तो आए नहीं, किसी और की समझ में आए हों तो आए हों। फिर इस आंख से भी पानी टपकने लगा। टप-टप टपकता है यह पानी। दुखी कर देता है। अब डॉक्टर कहता है, 'यह मेरा क्षेत्र नहीं है, इसके लिए दूसरे डॉक्टर के पास जाओ।'

आजकल घर में इस विषय पर मुझसे कोई बात नहीं करता। बेटा बहू कहते हैं, 'मना तो किया था, अभी मत करवाओ सर्जरी, किसी की सुनती तो हो नहीं।' बहुत सहानुभूति दिखाते हैं तो कह देते हैं, 'मां, तुम्हारा भाग्य।' पति से तो झगड़ा ही हो जाता है। मैं कहती हूं, 'इसी डॉक्टर ने तुम्हारी आंख तो ठीक कर दी थी।' ये चिढ़ जाते हैं, 'मेरी भी फोड़ देता तो तुम खुश हो जातीं?'

मैं यह सब कब चाहती हूं। पर, मेरी अपनी आंखें अच्छी भली थीं, अच्छा भला देखती थीं, दिखाती थीं, पर अब देखे न, एक कुछ देखती नहीं और दूसरी यह टप-टप पानी टपकाती रहती है। रोती नहीं हूं मैं इस स्थिति पर, हंसती हूं, रोने की गुंजाइश ही कहां है, टपक तो रहा है पानी, आंसू न सही।

तो कुछ देर मैं आंख-पुराण बांचती रही। फिर ये झील में दूर जाती नौकाएं मुझे दिखाने लगे।

'तुम्हीं देखो दूर की चीजें, मुझे तो पास बैठे, रेत में खेलते ये बच्चे ही दिख जाएं तो वही बहुत है। देखो कितनी मेहनत से रेत जमा कर रही है यह बच्ची अपनी बाल्टी में।'

मेरी आंख अब दूर तक कुछ देख नहीं पाती, शायद मेरे पति ने मेरे स्वर में मेरे इस दुख को समझ लिया, इसलिए नौका की बात छोड़, बच्चों पर ही आ गए, 'तुम्हें बच्चों से बहुत मोह है। बच्चे होते ही हैं बहुत प्यारे।' ये अपने बुढऊ दार्शनिक अंदाज में आ गए....

'अब सत्तर की हो रही हो, मोह कुछ कम करो।'

कम कहां होता है मोह। सुनीता की याद हो आई। मैं उन्हें कल आए सुनीता के फोन की बात सुनाने लगी। कल शाम कितनी देर तक बात की। फोन पर नंबर देखा तो कोई नया सा अपरिचित नंबर था, फिर आवाज सुनीता की सुनाई दी, नंबर की बात पूछी तो बोली, 'हां, बेटे के घर आई हुई हूं, यह उसके फोन का नंबर है। बहू को किसी डांस पार्टी में जाना था। उसकी नैनी शाम सात बजे के बाद रुकती नहीं तो उसने कहा' मौम, आप टिमी के पास रह जाएं तो मैं पार्टी में जा सकूंगी। 'मैंने सुनीता को चिढ़ाया था, 'तो आयागिरी कर रही हो?'

'अरे नहीं, मुझे तो इतना अच्छा लगता है टिमी के साथ रहना, आयागिरी का तो सवाल ही नहीं उठता।' फिर वह लंबा किस्सा सुनाने लगी, 'मैं आलू का पराठा बना रही थी न टिमी के लिये। देख घर में तो चार चपाती बनाना भी मुझे बहुत बड़ा झंझट लगता है।

कौन आटा गूंधे, सारा काम फैलाए, बनी-बनाई चपाती का पैकेट बाजार से खरीद लाती हूं। पर जब टिमी कहती है न,' 'दादी, आलू-पराठा' तो मैं बड़े चाव से सारा काम करने लगती हूं। आलू भी उबालूंगी, आटा भी गूंधूंगी, तो पराठा बनाते बनाते मैं गाना गाती जा रही थी, 'जिंदगी कैसी है पहेली हाय।' तो टिमी बोली, दादी, पहेली क्या? फिर मैंने उसे पहेली समझाने के लिये गाना गाया, 'तीतर के दो आगे तीतर, तीतर के दो पीछे तीतर।' फिर टिमी बोली, 'दादी तीतर क्या?' तो मैंने कागज और रंग लेकर उसके लिए तीतर बनाए। बहुत मजा किया। अब खा-पीकर खेलकूद कर सो गई है।

मैं बहुत रस लेकर सुनीता के सारे संवाद विस्तार से सुना रही थी। ये पता नहीं कितना सुन रहे थे, कितना अनुसना कर रहे थे। बस इतना ही बोले, 'तुम औरतें बच्चों के मोह-जाल में ही फंसी रहती हो।'

ग्यारह बजने को हैं। पिकनिक के लिए आने वाले लोग पार्क के हरी घास वाले मैदान में इकट्ठे हो रहे हैं। हम भी उठ कर उस ओर चल दिए। हमें देख समीर भी हमारी ओर बढ़ आया। कुछ दोस्तों से, कुछ के माता-पिता से परिचय करवा के आगे बढ़ गया। हम भी ठीक सी जगह देख, हरी घास पर बिछी नीली चटाइयों पर बैठ गए। आंख से पानी, रह-रह कर टपकता ही जा रहा था। टपकता रहे पानी, पर कुछ-कुछ देखती तो है यह आंख, दूसरी तो कुछ भी नहीं करती।

टपकती आंख से ही चारों ओर फैले, सुंदर और आकर्षक युवक-युवतियों को देखने की कोशिश करती रही। आजकल के ये परिधान तो इनके सौंदर्य में चार-चांद लगा देते हैं। यह आजकल चली है न कुर्तियों पर 'वीर-जारा' की कढ़ाई, कितनी अच्छी लगती है। ये कुर्तियां पहने सभी प्रीति जिंटा लगने लगती हैं। हमारे जमाने में वह सुरैया वाला डिजाइन चला था। कितना फबता था मुझ पर। इसी टपकती आंख से इन्हीं युवतियों में अपना यौवन देखने लगी। यही मेरा समीर मेरे गले में बाहें डाल कहा करता था, 'मां, तुम कितनी सुंदर हो। तुम मुझे सब से प्यारी लगती हो।' तब इस पर जान छिड़कने वाली दादी इसे बुलाती रह जाती थीं, और यह दूर भाग जाता था, दादी को चिढ़ाता था, 'दादी, तुम बूढ़ी हो।' आज वही समीर है, वही मैं हूं, उसे मेरा सौंदर्य तो क्या, टपकती आंख भी नहीं दिखती। आज मैं बूढ़ी हो गई हूं।

समीर को क्या कहूं, यौवन और सौंदर्य का मोह किसे नहीं होता? सत्तर बरसों में दर्पण में कितनी ही बार अपने रूप और सौंदर्य को क्षीण होते देखा है। जानती हूं, किसका रहा है कि मेरा रहेगा? गौतम बुद्ध ने देखा था बुढ़ापा, कितने दुखी हुए थे, 'हो जाएगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा?' हां, सभी को ऐसे ही हो जाना है। बुद्ध तो इस दुख का निदान और उपचार ढूंढ़ने निकल पड़े। बुद्धत्व प्राप्त कर लौटे थे। दुनिया को बहुत कुछ बताया। मैं तो इतना ही जान पाई हूं कि समझ लो बुढ़ापा आ गया है, अपना लो उसे, दुख और मोह से आधा छुटकारा तो मिल ही जाएगा। ये बैठे हैं मेरे पास ही। देख रहे होंगे कनखियों से रूपवती युवतियां। प्रकट रूप में तो बहुत पहुंचे हुए ज्ञानियों की सी बातें करते हैं... बालों को काला रंग लेने से यदि उम्र कुछ कम दिखने लगती है तो कौन सा बड़ा लाभ मिल जाता है? 'मानो रूप और यौवन का कोई महत्व ही नहीं जीवन में। मोह को जीत चुके हैं न। सुबह शाम पूजा-पाठ में समय बिताते हैं। घंटों मन की आंखों से मन का सौंदर्य देखने की साधना किया करते हैं। ये जाल समेट रहे हैं। मछलियों का मोह छोड़कर मांझी को एक समय चल ही तो देना है। बस ऐसी ही एक धुन में एक शाम मुझसे बोले थे, सोचता हूं, वकील से मिलकर संपत्ति की 'विल' तैयार करवा दूं। मेरे बाद तुम लोगों को सार-समेट करने में कठिनाई न आए।' कहते हुए एक कागज मेरी ओर बढ़ाया था। कागज हाथ में लिये मैं सोचने लगी, क्या लम्बी-चौड़ी संपत्ति है हम लोगों की? जीवन भर ईमानदारी से काम करने वाला एक साधारण आदमी सारा जीवन अपनी आय से कम खर्च कर के, पैसा-पैसा जोड़ कर एक मकान बना ले अपने रहने के लिए, बस वही संपत्ति होती है बच्चों के लिए छोड़ जाने को। आदमी के जीते-जी तो वह घर ही होता है रहने के लिए। उसके मरने के बाद ही संपत्ति हो जाती है। ऐसे ही राघवेंद्र, मेरे पति। कार्यालय में सदा ठीक से, अपनी सामर्थ्य भर कुशलता से काम किया। कोई उंगली न उठा सके कि उसने धन का या पद का दुरूपयोग किया। अपने इस यश के मोह में वे बड़े से बड़ा संकट झेलने या नुकसान उठाने को सदा तैयार रहे।

यह कागज प्रारूप था उस 'विल' का जो इन्होंने सोच-समझ कर तैयार किया था, वकील को दिखाने के लिये। बोले, 'तुम देख लो, यदि कुछ छूट गया हो, कुछ और जोड़ना हो तो बताना।' तब मेरी आंखों का यह हाल नहीं हुआ था। एक ही नजर में कागज की विषय वस्तु मेरी आंखों के सामने आ गई थी, 'बंगलौर वाले मकान के बराबर के तीन हिस्से होंगे, जो मेरी मृत्यु के बाद मेरी पत्नी, मेरे बेटे और मेरी बेटी को मिलें।' मैं हतप्रभ सी हो गई थी। कागज लौटते हुए मैंने कहा था, 'मुझे तो यह सब ठीक नहीं लगा।' 'क्यों?' ये आश्चर्य में थे।

मैं बहुत विचलित हो गई थी, पर फिर भी मैंने बहुत संभल कर शब्द कहे थे, 'भगवान न करे कि मुझे आपके बाद रहना पड़े, पर यदि विल कर ही रहे हैं तो मकान मेरे नाम कर देते, मेरी मृत्यु के बाद बच्चों को बराबर-बराबर मिलता।'

मेरी आपत्ति इन्हें रास नहीं आई। ये काफी क्षुब्ध हो गये थे। रोष और क्रोध में फट पड़े- 'मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें संपत्ति का इतना मोह है, अपने बच्चों पर भी विश्वास नहीं है तुम्हें।'

ऐसे आरोप के बाद मैं क्या कहती? पर ये बहुत कुछ कहते रहे थे। मैं मोहग्रस्त आंखों से बहते आंसुओं के साथ सब कुछ सुनती रही थी। सारी बातों का निचोड़ यह था कि मैंने जीवन में कौन सा काम समझदारी से किया है कि संपत्ति संभाल लूंगी, कोई सनकी निर्णय नहीं ले लूंगी। मेरी मां, मेरी बहनें, मेरी सखियां सभी ऐसे ही मोहग्रस्त अविवेकी लोग हैं, जिनकी संगति और प्रभाव के कारण मैं ऐसी तुच्छ प्रकृति की बातें सोचती हूं, कहती हूं।

आज टपकती आंख का पानी बार-बार पोंछती हूं, तब एक बार में ही सारे आंसू पोंछ लिए थे। सोच-समझ कर धैर्य से कहा था, 'मैंने मोह छोड़ दिया, संपत्ति बच्चों के नाम कर दीजिए।' मुझे इन पर भी भरोसा है, बच्चों पर भी, अपने आप पर भी क्योंकि मुझे 'उस' पर, 'उसकी' कृपा पर भरोसा है। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश सब विधि के हाथ में तो हैं। सब पढ़ रखा है, सब जानती हूं, पर ऐसे विचारों के चक्रजाल में फंस जाऊं तो अवसाद में डूब जाती हूं। बिल्कुल अकेली हो जाती हूं। आस-पास के परिवेश से कट गई, खेलते-कूदते बच्चे, खाते-पीते परिवार, सब जैसे ओझल हो गए। कितना समय बीत गया कुछ पता ही नहीं चला। तभी समीर थाली में खाना लेकर आ गया, 'पापा, मां के लिए तो मैं खाना यहीं ये आया हूं, आप अपने लिए वहां जाकर डाल लाइए, खाना शुरू हो गया है। सब लोग वहां से ही ले रहे हैं।'

मैंने थाली संभाल ली। देख रही हूं, थाली के किस किस खंड में क्या है। अभी ये अपनी थाली भर कर लाएंगे तो इसी टपकती आंख से झांक-झांक कर देखूंगी क्या क्या लाये हैं। समीर ने मेरी थाली में क्या नहीं डाला। खाने पीने की चीजों का मोह कहां छोड़ पाई हूं। यहां अमेरिका में तो यूं भी दिन में एक ही बार ढंग से खाना मिलता है। बेटा बहू डॉक्टर हैं। न तो उन्हें फुर्सत है तीन-तीन समय खाना बनाने-देने-खाने की और न वे ठीक ही समझते हैं इतना खाना। हमारी उम्र में तो हम जो कुछ भी, जितना कुछ भी खाते हैं सब गलत है उनकी दृष्टि में। मेरे खाने-पीने पर बहू अपने मित्रों में टिप्पणी करती है, 'खाने पीने की बहुत शौकीन है हमारी मां।' क्या गलत कहती है, शौकीन तो में हूं ही।

ये लौट आए हैं, बहुत ही कम चीजें हैं इनकी थाली में, मुझसे भी कम। 'बस इतना ही?' पूछती हूं तो कहते हैं, 'भूख ही नहीं है, इतना ही बहुत है।'

'क्यों क्या हो गया, तबीयत तो ठीक है?' मैं चिंता करने लगती हूं। चिंता तो इनकी लगी रहती है। दिन पर दिन इनका खाना कम होता जा रहा है। खुद अपने लिए खाना ढंग से जिंदगी भर नहीं डाला इन्होंने। मैं ही ध्यान रखती आई हूं, क्या लिया, क्या नहीं लिया। यहां अमेरिका में आकर, सबको करते देख कर सीख गए हैं, अपने लिए कुछ कुछ काम करना। नहीं तो सदा से ही, नाश्ते-खाने का समय हुआ और आकर खड़े हो जाएंगे रसोई के पास 'आज नाश्ते में क्या बनाया है', 'खाने में क्या दे रही हो'। अपने हाथ से न कभी कुछ बनाया न डाला।

'नहीं, तबीयत तो ठीक ही है' ये कहते हैं और खाने लगते हैं। 'नंदा के बारे में क्या सोचा है तुमने?' खाते हुए ये मुझसे पूछते हैं। नंदा हमारी बेटी है। न्यू-जर्सी में रहती है। इनके सवाल का क्या जवाब दूं। अभी मैं खुद ही कुछ निर्णय नहीं ले पाई हूं। कल जब से उसका फोन आया है सोच में डूबी हूं। बहुत बुला रही है। 'मेरे लिये नहीं आते तो अनिका के लिए ही आ जाओ।' उसने बहुत कहा था। अनिका जब छोटी थी, उसकी देखभाल के लिए नंदा के आग्रह पर मुझे अक्सर अमेरिका आना ही पड़ता था।

'अनिका तो अब बड़ी हो गई,' कह कर मैं अपनी आंख का कष्ट बताने लगी थी। नंदा का स्वर तेज हो गया था, 'खास बड़ी हो गई है, शरीर से ही हुई है, अकल धेले की नहीं। एक दिन भी अकेली नहीं छोड़ सकते। लाख समझा कर जाओ, कोई भी घंटी बजाए दरवाजा मत खोलना और यह पगली पोस्टमैन भी आएगा तो दरवाजा खोल देगी। मां, यहां का पोस्टमैन तुरन्त समझ जाता है कि यह दरवाजा खोलने आई है तो घर में यह अकेली ही होगी। किसी दिन कुछ ऊंच-नीच हो गई तो रोते रह जाएंगे हम सब।' फिर वह मेरी आंख पर बरसी, 'और मां, तुम्हारी आंख जैसी वहां टपकती है वैसी ही यहां भी टपकती रहेगी। वहां कौन सा कुछ कर रही हो? न तुम किसी को दिखाती हो और न समीर और अनिला ही कुछ कर रहे हैं। बस तुम यहां आने का कार्यक्रम बनाओ। तुम्हारे यहां रहने से अनिका को घर में अकेले छोड़ने की समस्या तो सुलझ जाएगी न।' फिर उसने एक नया पासा फेंका था, 'मां, हम इस लौंग वीक-एंड में लंदन घूमने जाने का प्रोग्राम बना रहे हैं। तुम यहां होगी तो हमारे साथ-साथ तुम भी लंदन देख लोगी।'

उसके स्वर की तेजी के बावजूद मैंने कहा था, 'मैं क्या देखूंगी लंदन, न मुझसे चला जाता है, न मुझे कुछ दिखाई देता है।'

उसके पास समाधान था, 'अच्छा नहीं चला जाता तो तुम गाड़ी में बेठी रहना। साथ तो रहोगी न।'

क्या सोचूं और क्या जवाब दूं बच्चों की इन बातों का? ये तो कह देंगे तुम बच्चों के मोह में फंसी हो। अब अनिका भी मोह हो गई क्या?

भोजन निपटा कर मैं तो लेट गई। झपकी लग गई। उठी तो देखा शाम हो गई है, चाय के शौकीन शाम की चाय पी रहे हैं। बहुत चीनी वाली, पिकनिक की चाय मुझे भाती नहीं। इसलिए कुछ खास मन नहीं हुआ चाय का। यूं भी आजकल शाम की चाय से रात की नींद भी गड़बड़ हो जाती है, सो टाल ही रही थी, पर फिर देखा समीर मेरे लिए चाय का गिलास ले आया। अच्छी गरम थी। दो घूंट भर ही लिए। कुछ ताजगी आ गई।

समेटा-समेटी करके चले तो रास्ते में समीर ने गाड़ी स्टोर पर रोकी।

'कुछ जरूरी सामान लेते चलें मां! अनिला का फोन आया था। फिर पूरे हफ्ते समय नहीं मिलेगा।'

समीर जल्दी-जल्दी सामान उठाने लगा। एक शैंपू मैंने भी उठा लिया। समीर ने देखा तो टोका, 'मां, यह क्या उठा लिया अच्छा वाला लेतीं।'

'नहीं यही ठीक है, इसकी कीमत एक डॉलर कम है।' मैंने अपना मत प्रकट किया।

'तुम भी मां, एक-एक डॉलर का मोह पाले हुए हो।'

ठीक ही कह रहा है समीर। मैं तो डॉलर पहले और चीज बाद में देखती हूं। बूढ़ी होने को आई, एक डॉलर का मोह नहीं छोड़ पाती।

घर आकर एक गिलास संतरे का रस पिया। भूख और प्यास दोनों शांत हो गई। बहू घर आ चुकी थी। शेष लोगों के खाने-पीने की जरूरतें उसने संभाल लीं।

सोने के लिए लेटी तो थकान के बावजूद नींद जैसे आंखों से दूर भाग रही थी। रह-रह कर आंख की ज्योति क्षीण होने जाने के बुरे विचार मन को घेरते जा रहे थे। आंख से दिखाई नहीं देगा, चलने फिरने से लाचार होती जाऊंगी, यह कैसा जीवन होगा? फिर शायद कोई सपना देखा था। एक बहुत सुंदर महल जैसा घर, हर चीज सुंदर, आकर्षक, करीने से सजाई हुई। मैं सीढ़ियां चढ़ती हुई ऊपर चली गई थी। कई कमरे, प्रत्येक की सजावट भव्य। फिर आखिरी कमरा खोला। एक विरूप अंधी बुढ़िया वहां बैठी हुई दिखाई दी। मूर्ति थी या सचमुच की बुढ़िया? मैं डर गई थी। हां, सपना ही था।

आज सोमवार है। पिकनिक की थकान के कारण सुबह आंख कुछ देर से खुली। बिस्तर पर ही थी कि गौं-गौं की आवाज आने लगी। सोमवार को घास काटने वाला आता है। उसी की मशीन की आवाज है यह। घास ही नहीं काटता, बेलों-पेंड़ों की कटाई-छंटाई भी करता है। मैं बैठक में सोफे के कोने पर जा बैठी। यहां से यह पीछे का बगीचा बहुत ही सुदंर दिखाई देता है। अभी वह बाहर का काम पूरा करके, घर के इस बगीचे में काम करने आएगा तब तक मैं चाय बना कर ले आई। सुबह-सुबह बिना चीनी की यह सुगंधित चाय मन खिला देती है मेरा। चाय का कप लिए मैं बगीचे में आ गई। मुझे अच्छा लगता है बगीचे में काम करवाना। वैसे तो वह स्वयं ही बहुत ठीक से काम कर देता है, अपने काम में बहुत चुस्त और कुशल है, पर बीच-बीच में मैं कुछ कहती हूं। तो बड़ी खुशी से वह भी कर देता है, 'देखो, यह टहनी दीवार पर कुछ जयादा झुक आई है, इसे भी काट देना।'

'जरूर-जरूर', वह खुशी से सिर हिलाता है।

पिछले कई हफ्तों से इस एक टहनी को देख रही हूं, अपनेपन का एक रिश्ता सा हो गया है इससे, मोह जैसा ही कुछ कह लो। बुढ़ा कर मानों झुक सी गई हैं। हरी-भरी शाखाओं से लदे वृक्षों में बस एक यही है जिसमें कुछ बदसूरत से भूरे-भूरे पत्ते लटक रहे हैं। पिछले हफ्ते, मन बहुत पक्का किया था, बगीचे की सुंदरता के लिए, इस सोमवार तो इसे कटवा ही दूंगी।

वह अपना काम लगभग समाप्त कर चुका है, काटे हुए पत्ते और टहनियां समेट कर 'बिन' में डाल रहा है। कितनी तेजी से चलते हैं इसके हाथ-पैर। हम सोचते ही रह जाते हैं और वह क्षणों में अपना काम समाप्त कर, यह जा, वह जा। वह जा रहा है पर मैं सोचती ही रह जाती हूं। टहनी काटने के लिए नहीं कहती।